स्कूल की पुनर्कल्पना का मौक़ा दे रही है महामारी

हर बस्ती में एक गतिविधि केंद्र हो, जहां बच्चे कुछ बना सकें, कुछ कर सकें

अरविन्द गुप्ता

एक संस्था के रूप में स्कूल की आलोचना पिछली आधी सदी के दरमियान जन्मी और फली-फूली है। शिक्षा के सिद्धांतकार एवरेट रीमर ने 1960 के दशक में स्कूल की मौत की घोषणा कर दी थी। 1970 दशक के आखिरी सालों में ब्राज़ील के शिक्षाविद पाउलो फ्रेरे की चर्चित पुस्तक 'खतरा स्कूल' प्रकाशित हुई। तीखे कटाक्षों वाले कार्टूनों के जरिए इस पुस्तक में बताया गया कि किस प्रकार स्कूल बच्चों को नुकसान पहुंचाते हैं। ज्यादातर स्कूल बाड़ाबन्द जेलखाने जैसे होते हैं, जहां चंद "विशेषज्ञों" द्वारा तैयार किए गए अजनबी पाठ्यक्रमों की घुट्टी जबरन बच्चों को पिलाई जाती है।

आज कई स्कूल विशालकाय कारपोरेट प्रतिष्ठान हैं, जहां हजारों बच्चे पढ़ते हैं। तमाम व्यावहारिक पहलुओं से देखें तो ये फैक्टरियों की तरह चलाए जाते हैं। या बेहतर शब्दों में कहें तो लघु-सेनाओं जैसे हैं। उदाहरण के लिए लखनऊ का एक निजी स्कूल, जो उसके पास 56,000 विद्यार्थियों की फ़ौज होने का दावा करता है।

लेकिन प्रगतिशील विचारकों ने हमेशा से ही बच्चों के लिए "आजाद स्कूलों" की कल्पना की है। महान रूसी उपन्यासकार टॉलस्टॉय ने अपने घर में गरीब बच्चों के लिए एक स्कूल की स्थापना की थी। यास्नाया पोल्याना नाम के इस स्कूल में न तो कोई सख्त समय-सारिणी थी और न ही यहां बच्चों को होमवर्क या शारीरिक दंड दिया जाता था। मारिया मोंटेसरी पहली इतावली महिला थीं जो डॉक्टर बनीं। उन्होंने बच्चों के "विकास के चरणों" पर काम किया और यही काम उनके शैक्षिक दर्शन का आधार बना। मोंटेसरी का शैक्षिक दर्शन भी बच्चों की आजादी और पसंद पर जोर देता है। रटंत शिक्षा की टैगोर की आलोचना उनकी बेजोड़ "तोता कहानी" में बहुत अच्छी तरह प्रकट हुई है। एक स्वप्नदर्शी प्रधानाचार्य द्वारा चलाया गया एक छोटा सा प्रगतिशील स्कूल मशहूर पुस्तक तोत्तोचान के माध्यम से अमर हो गया। दुनिया का संभवतः सबसे उम्रदराज मनमौजी स्कूल समरहिल है। इसकी स्थापना करीब 100 साल पहले 1921 में ए.एस. नील ने इंग्लैंड में की थी। वे मानते थे कि स्कूल को बच्चे की जरूरतों की अनुरूप होना चाहिए न कि बच्चे को स्कूल की जरूरतों के।

अमूमन सरकारी स्कूल तमाम गलत कारणों से चर्चा में आते हैं- कभी दीवार ढह गई, छत गिर गई तो कभी मध्यान्ह भोजन खाकर बच्चे बीमार पड़ गए आदि। लेकिन दिल्ली की आप सरकार ने अपने स्कूलों को प्राइवेट स्कूलों से बेहतर बनाने का संकल्प लिया। उन्होंने यह कामयाबी हासिल की स्कूली ढांचों में सुधार के माध्यम से (बदबूदार शौचालयों से मुक्ति), शिक्षकों को सम्मान देने से, स्कूल प्रबंध समिति के गठन से और शिक्षण पद्धतियों में नवोन्मेष

के लिए कई अच्छे गैर-सरकारी संगठनों को शामिल करने से। 2015 में दिल्ली सरकार के स्कूलों में मात्र 17,000 कक्षा-कक्ष थे। महज तीन साल के भीतर आप सरकार ने स्कूलों में 8000 नए कक्षा-कक्ष जोड़े। 11000 और कक्ष निर्माणाधीन हैं। लक्ष्य पूरा हो जाने पर उनके पास कुल 36,000 कक्ष होंगे।

भारत में स्कूल हमेशा से बंटे हुए रहे हैं। 1966 की कोठारी शिक्षा आयोग की सिफारिशों को कभी लागू नहीं किया जा सका। आज, बच्चा किस स्कूल में जाएगा, यह उसके सामाजिक-आर्थिक स्तर से तय होता है। महामारी ने इस विभाजन को और अधिक गहरा कर दिया है। कोविड-19 की मार पालकों पर बुरी तरह पड़ी है। कई पालक स्कूल की फीस भरने में असमर्थ हैं। कुछ ने अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों से निकालकर सरकारी स्कूलों में डाल दिया है। लेकिन सरकार है कि अपने ही स्कूलों से पल्ला झाड़ने की जुगत में दिन-रात एक किए हुए है। या अपने स्कूलों की कीमती ज़मीन और प्रबंधन को निजी संस्थाओं को सौंप रही है। आखिर सरकार इस तरह बेरोकटोक निजीकरण क्यों करना चाहती है? क्या उसे पता नहीं कि अमेरिका, इंग्लैंड, जापान और फ़िनलैंड जैसे सर्वाधिक अगड़े देशों में सबसे अच्छे स्कूल सरकारी स्कूल ही हैं? गरीबों और अमीरों के बीच डिजिटल खाई भी और अधिक चौड़ी हो गई है। मोबाइल, लैपटॉप और इंटरनेट तक गरीबों की पहुंच नहीं है।

ऐसे हालात में, आस-पड़ोस में पढ़ने-सीखने की जगहों व मंचों की कल्पना और कोशिश की जा सकती है। महामारी के दौरान लाखों लाख वयस्क घर से अपना काम कर रहे हैं। कइयों को लग रहा है कि उत्पादक काम करने के लिए ऑफिस की कोई ज़रूरत नहीं है। इस प्रक्रिया में कुछ को ऑफिस और फैक्टरी के रोजमर्रा कामकाज के उबाऊपन का अहसास हुआ और इसके साथ ही उन्होंने उनके भीतर छुपी संभावनाओं की खोज की है। कई ने व्यस्त, प्रदूषित शहरों को अलविदा कर दिया और अपने छोटे शहरों व गांवों में वापस लौट गए।

जब हम स्कूल की पुनर्कल्पना कर रहे हैं तब हमें आस-पड़ोस में पढ़ने-सीखने की जगहों व मंचों के निर्माण के लिए कोशिश करनी चाहिए। बड़ी आवासीय सोसाइटियों में पहले ही कम्युनिटी हॉल बने हुए हैं। छोटी सोसाइटियां और बस्तियां भी आसानी से ऐसी जगह तय कर सकती हैं जहां बड़े अपने कौशल व अनुभवों को छोटे बच्चों के साथ साझा कर सकें। प्रत्येक हाउसिंग सोसाइटी और बस्ती के पास एक "गतिविधि केंद्र' होना चाहिए जहां बच्चे कुछ बना सकें, कुछ कर सकें।

1960 में इंग्लैंड में बहुत सारे कम्युनिटी कॉलेज हुआ करते थे। वहां, कोई भी जिसके पास कुछ न कुछ हुनर था, अपना कोर्स पढ़ा सकता था। और कोई भी जिसे किसी हुनर या विषय को सीखना होता था, वहां प्रवेश ले सकता था। किसी किस्म की डिग्री की कोई ज़रूरत नहीं थी। कोर्स भी नाना प्रकार के थे- हाइकू, चीनी कला, तुकबंदी, कुम्हारी से लेकर साइकिल मरम्मत तक! आज हमें ज़रूरत है स्कूलों की पुनर्कल्पना की- सामुदायिक शिक्षा के मंच या जगह के रूप में। अभी स्कूलों का शिक्षक के बारे में नजरिया बेहद संकीर्ण है- ऐसा व्यक्ति जिसके पास बी.एड. की डिग्री हो। अगर हम हजारों हजार सेवानिवृत्त पेशेवरों की एक शिक्षक

के रूप में कल्पना करें तो कैसा रहेगा? वे अपने सालों-साल के व्यावहारिक अनुभव को शिक्षा में बदल सकते हैं।

सरकार महामारी का इस्तेमाल अपने स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए कर सकती है। अव्वल तो वह स्कूलों के ढांचों को सुधार कर इन्हें और आकर्षक बना सकती है। साफ़-सुथरे शौचालय, पेयजल, पुस्तकालय, एक जोड़-तोड़ प्रयोगशाला और एक खेल-कूद का मैदान जुटा देने भर से बहुत फ़र्क पड़ जाएगा। दूसरे, सीखने की प्रक्रिया को आनंददाई बनाना होगा। बच्चों को उम्र के हिसाब से अलग-अलग करने के बजाय कक्षाओं में मिश्रित आयुवर्ग के बच्चों को बिठाया जा सकता है। बच्चों को अपनी गति से सीखने की भी छूट देनी चाहिए। तीसरे, अपने चैंपियनों की पहचान कीजिए- सरकारी व्यवस्था के भीतर के 'हीरो' तलाशिए और प्रभावी मानव संसाधन की तरह उनका उपयोग कीजिए। कोई आर्थिक प्रोत्साहन दिए बिना, मात्र बढ़ावा देने भर से, कई नवाचारी शिक्षक प्रोत्साहित महसूस करने लगेंगे। चौथे, सभी जगह के बेहतरीन तौर-तरीकों व अनुभवों से अपनाने के लिए स्थापित गैर-सरकारी संस्थाओं को आमंत्रित किया जाना चाहिए।

महामारी के दौरान 15 लाख लोग रोजाना archive.org वेबसाइट पर जाते थे। यह पुस्तकों का सबसे बड़ा वैश्विक ऑनलाइन पुस्तक भंडार है जहां से 2.8 करोड़ पुस्तकें मुफ़्त डाउनलोड की जा सकती हैं। हमें भारतीय भाषाओं के लिए भी इसी तरह के मुफ़्त आर्काइव तैयार करने चाहिए। सराकार की हाल की घोषणा कि वह वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं की थोक खरीद करेगी ताकि हर कोई इन्हें पढ़ सके, सही दिशा में उठाया गया एक कदम है।

हमें ऐसी स्कूल चाहिए जहां विभिन्न वर्ग, जाति, धर्म, क्षमता के बच्चे एक साथ पढ़ पाएं और दूसरे की फ़िक्र करना व समानुभूति रखना सीख सकें। कोलार (कर्नाटक) स्थिति डेविड हॉर्सबरो के नीलबाग स्कूल में बच्चे अपनी सहज गति से सीख सकते थे। वे कक्षा 5 की तेलुगू, कक्षा 3 की अंग्रेज़ी और कक्षा 7 की गणित एक साथ सीख सकते थे। वे अलग-अलग कौशलों व क्षमताओं के लोगों के साथ काम करना सीखते थे। वे सहयोग, समूह कार्य, करुणा, मानव गरिमा और विचारों की बहुलता का पाठ भी सीखते थे।